वैश्विक शांति, समरसता एवं सुरक्षा के संवर्धन में वेदों की सार्थकता

डॉ0 उष्मा यादव
असिस्टेण्ट प्रोफेसर (संस्कृत), काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ज्ञानपुर, भदोही –221304 (उ0प्र0)

वेद भारतीय संस्कृति का आधार हैं। वैदिक ऋचाओं में ही हमारी सम्पूर्ण धार्मिकता, नैतिकता, सामाजिकता एवं दार्शनिकता का आरंभिक स्वरूप प्रस्फुटित हुआ है। वेदों में वर्णित उच्च सामाजिक आदर्श भाषा, धर्म, जाति, शिक्षा, लिंग एवं धन–सम्पत्ति के आधार पर भेद होने पर भी मानव को सभी से प्रेम करने का दिव्य सन्देश देते हैं। वैदिक अन्तर्दृष्टि को जीवन में आत्मसात् करके सम्पूर्ण विश्व में शांति एवं सुरक्षा की स्थापना की जा सकती है। आर्यों के लिए सम्पूर्ण विश्व ही बन्धुवत् था। ऋग्वेद के संज्ञान सूक्त में अभिव्यक्त समानता और लोक कल्याण की भावना वैदिक सहिष्णुता एवं समरसता का प्रतीक है तो वहीं अथर्ववेद के पृथिवीसूक्त में सम्पूर्ण पृथ्वी को माता कहकर उसकी सभी सन्तानों अर्थात् सम्पूर्ण मानव को स्वजन मानने का भाव प्रदर्शित किया गया है।

वैदिक ऋचाओं में वर्णित समाज के इस उदात्त स्वरूप ने पाश्चात्य विद्वानों को भी अपनी तरफ सहज ही आकृष्ट किया है। मैक्समूलर महोदय का मत है– ''विश्वबन्धुत्त्व का जो उपदेश हमें इस भाषा में मिलता है वह कहीं भी नहीं मिल सकता था। यदि संस्कृत में हमें अन्य कोई उपलब्धि नहीं हुई होती तो भी केवल इसी एक उपलब्धि के सहारे इसकी उपादेयता सर्वाधिक है।''[1] उसे सब ईश्वरमय प्रतीत होने लगता है– **''सर्वं खल्विदं ब्रह्म।''** जब सब ईश्वर के अंश हैं तो उसके लिए घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, शोक का विषय नहीं रह जाता है। सर्वत्र परमानन्द की अनुभूति होने लगती है। उसे यह विश्वास हो जाता है कि एक ही परमतत्त्व सबके अन्तःकरण और बाह्य जगत् में समान रूप से स्थित है– ''**तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः**'' (ईश0 5)।

वैदिक वाङ्मय में सम्पूर्ण विश्व के प्रति उदात्त भावना के दर्शन होते हैं। ऋषियों ने प्राकृतिक शक्तियों एवं उनके उपादानों से विश्वबन्धुत्त्व की नैतिक प्रेरणा ग्रहण की। उनके हृदय में विद्यमान सामाजिक आदर्शों का प्रस्फुटन सद्भावना एवं समरसता पर आधारित है।

सद्भावना का तात्पर्य है 'सद्विचार करना' अर्थात् अपने समान ही दूसरे के भी कल्याण एवं सुख की कामना करना सद्भावना है। सद्भावना से सहानुभूति, दया, परोपकार, ममता और एकात्मकता की भावना उद्बुद्ध होती है। वैदिक मंत्रों में प्रार्थना की गयी है– ''हमारा आत्मीय जनों से और पराये लोगों से एकमत्य स्थापित हो। हे अश्विनी देवो! हमारे अन्तःकरण में संज्ञान (सद्भावना) को स्थापित करो''।[2] इस मंत्र में अपने लोगों के समान ही दूसरे व्यक्तियों के साथ व्यवहार करने की प्रेरणा दी गयी है। दूसरों के कल्याण हेतु हार्दिक–इच्छा एवं दूसरों के प्रति हार्दिक–प्रेम ही सद्भावना है। वैदिक आर्य परोपकार का बाह्य–प्रदर्शन नहीं करते थे अपितु हृदय से हृदय को जोड़ने की कामना करते हुए मिलकर कार्य करने में विश्वास करते थे। उनका मत है, 'हम अपने मन से दूसरे के मन को जोड़ें, मिलकर कार्य करें, दिव्य मन से पृथक् न हों, मन को कष्ट देने वाली ध्वनि न हो, इन्द्र का वज्र हमारे ऊपर न गिरे।[3]

सद्भावना से मित्रता की भावना उत्पन्न होती है। आर्यजनों ने मैत्रीभाव के व्यापक अर्थ को आत्मसात् किया है। वे न केवल विश्व के समस्त प्राणियों से मित्रता करते हैं अपितु देवताओं एवं प्रकृति के प्रति भी सखा–भाव की अनुभूति करते हुए कामना करते हैं– हे इन्द्र, दक्षिण,

उत्तर, पश्चिम और पूर्व से हमको शत्रु रहित कीजिए। कोई हमसे द्वेष करने वाला न हो।[4] वैदिक ऋचाओं में वर्णित मित्रता की भावना वास्तव में सम्पूर्ण सृष्टि एवं सृष्टिकर्त्ता के प्रति व्यक्त ऋषियों का स्नेह एवं कृतज्ञता है। ऋषियों ने अलौकिक शक्तियों के साथ मैत्री करने का सन्देश दिया है। उन्होंने अनुभव किया कि मित्रता के कारण ही हमें देवताओं की कल्याणकारी सुबुद्धि एवं उदारता प्राप्त होती है। अतएव हमें देवताओं का मित्र बनने का यत्न करना चाहिए।[5] अग्नि से प्रार्थना की गयी है कि वह मित्र के समान कल्याणकारी हो।[6] एक मंत्र में तो अग्नि को मानवमात्र का बन्धु, मित्र, प्रिय, रक्षक एवं सखा कहा गया है।[7] वैदिक आर्यों ने कल्याणकारी मित्रता के लिए अग्नि का आह्वान किया है– 'हे अग्नि, कल्याणकारी मैत्री और महती रक्षा से युक्त होकर हमारे पास आओ'।[8] अन्यत्र भी ऋषियों ने देवताओं से मित्रता की कामना की है, ''हमें मित्रता, कल्याण एवं प्रकाशयुक्त धन के लिए स्वीकार करो''।[9] मित्र व्यक्ति का मार्ग निर्देशक या यथार्थ मार्ग बताने वाला होता है[10] जो उसे सदसद् का ज्ञान करा कर सही मार्ग में ले जाता है। मित्र के कर्त्तव्य को ऋषियों ने इस प्रकार निरूपित किया है, ''हे सोम, तुम हमारे मित्र बनो और दुष्ट मायावी–राक्षसों का वध करते हुए हमारे पाप को दूर करो''।[11] इससे स्पष्ट है कि वास्तविक मित्र वही है जो अपने मित्र को दुराचरण से दूर करे और तामसिक प्रवृत्तियों से उसकी रक्षा करे। ऋग्वेद में स्वार्थ में तत्पर कृपण मित्र को त्याज्य मानते हुए कहा गया है, ''वह मित्र नहीं है जो साथ रहने वाले और सेवा करने वाले को अन्न (धन) नहीं देता है। ऐसे मित्र को छोड़ देना चाहिए''।[12] वास्तव में सच्चा मित्र वही है जो विपरीत परिस्थितियों में अपने साथी की सहायता करता है।

दैवी मित्रता के द्वारा उद्भूत व्यापक अवधारणा ने उस भाव को जन्म दिया जिसमें आर्यों ने सम्पूर्ण विश्व को मित्र रूप में स्वीकार किया। इसी भावना से ओतप्रोत ऋषि प्रार्थना करते हैं– ''हे देव! सभी प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें और मैं भी उन प्राणियों को मित्र रूप में देखूँ। हम परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें''।[13] वैदिक मीमांसक सम्पूर्ण विश्व के प्रति मैत्री–भाव के समर्थक थे क्योंकि वे विश्व में शान्ति एवं सद्भाव के लिए मित्रता एवं प्रेम जैसे गुणों के महत्त्व से परिचित थे।

वैदिक आर्यजनों ने सम्पूर्ण प्राणियों में परमतत्त्व के अंश को स्वीकार करते हुए सभी के प्रति समान व्यवहार करने का उपदेश दिया है। यजुर्वेद में ऋषियों का समत्त्व–भाव इस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है– ''जिस अवस्था को प्राप्त करके योगी (ज्ञानवान्) के लिए सभी प्राणी आत्मरूप हो जाते हैं, उस अवस्था में एकत्त्व का दर्शन करने वाले को मोह और शोक कहाँ होता है अर्थात् नहीं होता है''।[14] इस मंत्र में समदर्शी व्यक्ति को 'विजानतः' (ज्ञानी) की संज्ञा दी गयी है। सभी जीव को ईश्वर की सन्तान मानने वाले व्यक्ति का निज–पर का भाव तिरोहित हो जाता है। उपनिषद् में समत्त्व–भाव का ऐसा आदर्श स्थापित किया गया है जहाँ व्यक्ति सम्पूर्ण सृष्टि में एकत्व का साक्षात्कार करने लगता है और उसे सम्पूर्ण चराचर जगत् सर्व व्याप्त ईश्वर से परिपूर्ण होने की अनुभूति होने लगती है।[15] इस सिद्धान्त के द्वारा ऋषियों ने न केवल सम्पूर्ण मानव जाति में अपितु प्राणीमात्र में समभाव की घोषणा की है।

आदर्श सामाजिक जीवन का आधार समानता, परस्पर सहयोग एवं एकता है। सभ्य–असभ्य, उच्च–निम्न तथा एक योनि और दूसरी योनि का भेद सामाजिक संगठन को निर्बल कर देता है। अतएव मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने मनुष्य को मिलकर चलने (सं गच्छध्वं), मिलकर बोलने (सं वदध्वं), समान मन वाले (सं वो मनांसि जानताम्) होने का[16] अर्थात् मन, वचन एवं कर्म से एकता का निर्देश दिया है। 'मिलकर चलने' का तात्पर्य है कि समाज में सभी प्राणी को बिना भेद–भाव के समान रूप से प्रगति के अवसर प्राप्त होने चाहिए। 'मिलकर बोलने' का अर्थ है

कि समाज में सभी को अपने विचाराभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त हो और सभी सम्यक् अर्थात् प्रिय संभाषण करें। सभी के हित में कही गयी वाणी ही 'सुनृत' वाणी है, जिसकी कामना ऋषियों ने अनेक मंत्रों में की है। 'समान मन वाले होने' से अभिप्राय 'मानसिक–सामजस्य' से है। जिसके अभाव में उत्पन्न वैमनस्य समाज को विखंडित कर देता है। ऋषियों का मत है कि जिस प्रकार देवगण समान मति वाले होकर यज्ञ में अपना–अपना भाग ग्रहण करते हैं उसी प्रकार मनुष्य को भी आचरण करना चाहिए।[17] अर्थात् इस संसार की सम्पूर्ण भौतिक सम्पदाओं पर सभी जीव का समान अधिकार है; उसका मिलकर उपभोग करना ही उचित है। किसी भी संसाधन पर बलात् एकाधिकार प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन है। इसी का परिणाम प्राकृतिक आपदाएं हैं।ऋषियों की वाणी प्राणियों के कल्याण के साथ–साथ सम्पूर्ण विश्व के स्वास्थ्य एवं आरोग्य के लिए मुखर हुई है।[18]

वेद मात्र धर्म और दर्शन ही नहीं है, आचार–व्यवहार तथा विचार की सुपरीक्षित और परिष्कृत प्रणाली भी है। अतएव के सामाजिक विकास के लिए वैदिक मूल्यों की शिक्षा आवश्यक है।

आधुनिक विद्यार्थियों के लिए वेदों की उदात्त सामाजिक अवधारणा आदर्श स्वरूप है जो सहयोग, सद्भाव, मैत्रीभाव, सहकारिता, समानता, सहिष्णुता और लोक कल्याण पर आधारित उस समाज की परिकल्पना प्रस्तुत करती है जिसमें कोई अस्पृश्य न हो। वैदिक वर्ण–व्यवस्था सामाजिक सद्भाव एवं समानता पर आधृत थी। वेदों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र– इन चारों वर्णों के घनिष्ठ सम्बन्ध एवं चारों के तेजस्वी होने की कामना की गयी है।[19] वेदों ने मानव को आदेश दिया है कि चाहे शूद्र हो या आर्य, सबका प्रिय देखो।[20] वस्तुतः वर्ण के आधार पर किसी प्राणी के अहित का विचार करना वैदिक आर्यजनों को कदापि प्रिय नहीं था।

वेद सभी के प्रति प्रीतिपूर्ण आचरण की प्रेरणा देते हैं, जिससे समानता एवं सह–अस्तित्त्व की भावना का विकास होगा। वैश्विक समरसता एवं प्रगतिशीलता के लिए पराये जनों से आत्मीयता की अनुभूति आवश्यक है; इस तथ्य के ज्ञाता मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने अनेक मंत्रों में सर्वहित के निमित्त स्वशुभेच्छा व्यक्त की है। ''प्रत्येक पुरुष दूसरे पुरुष की सब ओर से रक्षा करें''[21]– यह वैदिक परिकल्पना को परस्पर कल्याण एवं रक्षा के लिए तत्पर करती है। वैदिक मनीषियों की यह अभिलाषा ग्रहणीय है कि जिस प्रकार स्वर्ण सभी को प्रिय होता है उसी प्रकार हम भी सभी के प्रिय हो और हमारा द्वेषी कोई न हो।[22] आर्यों की सर्वहितकारी भावना में सभी के प्रति सात्त्विक निष्ठा को प्रबद्ध करती है। वैदिक ऋषियों ने सभी जीवों के प्रति समभाव की जो दृ ष्टि मानव को प्रदान की हैउसे आत्मसात करके सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त धर्म ,भाषा, लिंग एवं रंग के आधार पर भेद को समाप्त किया जा सकता है।

वैश्विक शान्ति एवं सुव्यवस्था के लिए लोक कल्याण की भावना अति आवश्यक है।`वेदों के अनुशीलन से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की महान् भावना का सूत्रपात् हो सकता है। वैदिक महर्षियों का चिन्तन प्राणिमात्र के कल्याण में निहित था। उनकी प्रबल इच्छा थी कि समाज में कोई भूखा–प्यासा न रहे और सभी निर्भय होकर जीवन व्यतीत करें।[23] मंत्रों में सबके प्रति हार्दिक प्रेम, करुणा एवं दया की भावना अभिव्यजित हुई है। ऋषि कहते हैं, ''मैं तुम्हारे लिए विद्वेष भाव को दूर करने वाला प्रीतियुक्त सौमनस्य कर्म उत्पन्न करता हूँ। गाय जैसे अपने वत्स को प्रेम करती हैं उसी प्रकार तुम परस्पर प्रेमभाव रखो।[24] वेद ऊँच–नीच की भावना से रहित समतावादी अन्तःचेतना की संप्राप्ति के अद्वितीय स्रोत हैं। ऋषियों का उपदेश है कि जिस प्रकार एक साथ जन्म लेने वाले मरुद्गण में कोई छोटा–बड़ा नहीं है उसी प्रकार मानव ऊँच–नीच की भावना से रहित होकर परस्पर बन्धुभाव रखते हुए उन्नति करें।[25]

वास्तव में समानता के परिप्रेक्ष्य में वैदिक मनीषियों ने मौलिक व न्यायसंगत अवधारणा प्रस्तुत की है। जिसके अनुसार सभी मनुष्य इसलिए समान हैं क्योंकि सभी में परमात्मा का अंश है। वैश्विक समानता की अवधारणा 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना में निहित है। गीता में कहा गया है कि योग से युक्त आत्मा वाला (योगी) तथा सब में समभाव देखने वाला (समदर्शी) आत्मा को सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित और समस्त प्राणियों को आत्मा में स्थित देखता है।[26] अथर्ववेद में पृथिवी को विभिन्न भाषाओं एवं विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोगों को धारण करने वाली कहा गया है।[27] इन मंत्रों से को सहज ही यह कर्त्तव्यबोध होता है कि पृथ्वी के सभी प्राणी समान और बन्धुवत् है अतएव सभी को परस्पर एकात्म भाव से रहते हुए समाज में सभी के प्रति प्रीतिपूर्ण समान व्यवहार करना चाहिए। जीवमात्र के प्रति उच्च–निम्न की विभेदकारी मनोवृत्ति अनुचित है।

वैदिक चिन्तन उस उच्चतम एकात्मभाव के विकास की आधारभूमि है जिसके विचारों को आत्मसात् करने वाला ब्रह्माण्ड के प्रत्येक कण से आत्मीय एवं पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित करने लगता है। वेद का आदर्श विश्वबन्धुत्त्व की भावना से ओतप्रोत समाज में निहित है जिसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड परिवार के रूप में वर्णित है। आर्यों ने ब्रह्माण्ड के कल्याणकारी स्वरूप का आदर्श प्रस्तुत किया है। उनके मत में ब्रह्माण्ड जीवमात्र के हित हेतु संचालित हो रहा है अतएव वे कामना करते हैं, ''आकाश–पृथ्वी तुम्हारे (प्राणी के) लिए मंगलमयी एवं कष्ट निवारण करने वाली हो; सूर्य आनन्ददायक ताप दे; वायु तुम्हारे अनुकूल रहे और स्वादयुक्त जल कल्याणकारी रूप में प्रवाहित हो; ब्रीहि आदि वनस्पतियाँ सुख दें; पृथ्वी का निचला एवं ऊपरी भाग हर्ष प्रदान करे एवं सूर्य–चन्द्र तुम्हारे रक्षक हो''।[28] इस मंत्र का यह अभिप्राय है कि आकाश, पृथ्वी, सूर्य इत्यादि के समान ही सभी व्यक्ति को प्राणिमात्र के कल्याण हेतु तत्पर रहना चाहिए।

वेद केवल धार्मिक ग्रंथ मात्र नही हैं अपितु सुव्यवस्थित एवम् वैश्विक समरसता के निर्माण में भी बहुत सहायक है। वर्तमान समय में जब संपूर्ण विश्व युद्ध की विभीषिका का सामना कर रहा है और एक देश दूसरे देश की सुरक्षा एवम् शान्ति के लिए खतरा बने हुए हैं ऐसी स्थिति में वेदों में वर्णित विश्वबंधुत्व की भावना तथा अनासक्त भाव से भोग का उपदेश देने वाली भारतीय संस्कृति विश्व में शान्ति , समरसता एवम् सुरक्षा की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. हम भारत से क्या सीखे? पृ0सं0–47
2. अ0वे0 7.52.1– संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः।
संज्ञानमश्विना युव मिहास्मासु। नि यच्छतम्।।
3. अ0वे0 7.52.2– सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा मा युत्स्महि मनसा दैव्येन।
मा घोषा उत्थुर्बहुले विनिर्हते मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते।।
4. अ0वे0 6.40.3– अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात्।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि।।
5. ऋ0वे0 1.89.2– देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं .....
6 .ऋ0वे0 1.58.6– मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने।
7 .ऋ0वे0 1.75.4– त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः। सखा सखिभ्य ईड्यः।
8 .ऋ0वे0 3.1.19– आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिः।
9 .ऋ0वे0 4.31.11– अस्मान् इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये। महो राये दिवित्मते।
10. ऋ0वे0 9.104.5– सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव।
11. ऋ0वे0 9.104.6
12. ऋ0वे0 10.117.4– न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः।

अपास्मात् प्रयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत्।।

13. यजु0 36.18– मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।

14. यजु0 40.7– यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।

15 . ईशा0 1– ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

16. ऋ0वे0 10.191.2

17 .ऋ0वे0 10.191.2, अ0वे0 6.64.1– देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।

18. ऋ0वे0 1.114.1– यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्।

19. यजु0 18.48– रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्।।

20. अ0वे0 19.62.1– प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये।

21. ऋ0वे0 6.75.14, यजु0 29.51, तै0सं0 4.6.6.5, निरुक्त 9.15– पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः।

22. अ0वे0 12.1.18– सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन।

23. अ0वे0 7.60.6– अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन।

24. अ0वे0 3.30.1– सहृदयं सांमनस्यमविद्वेष कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्स जातमिवाध्या।।

25. ऋ0वे0 5.60.5– अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।

26 . गीता 6.29 – सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

27 .अ0वे0 12.1.45– जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।

28 . अ0वे0 8.2.14–15

सन्दर्भ ग्रन्थ

- ऋग्वेद का सुबोध भाष्य – पं0 दामोदर सातवलेकर प्रकाशक– स्वाध्याय मण्डल, पारडी, 1993
- ऋग्वेद (प्रथम से चतुर्थ खण्ड) – पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य प्रकाशक– संस्कृति संस्थान, बरेली, संस्करण– 2008
- अथर्ववेद – पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक– संस्कृति संस्थान बरेली,संस्करण– 2007 (भाग 1 और भाग 2)
- ऐतरेय ब्राह्मण (प्रथम–द्वितीय भाग)– डॉ0 सुधाकर मालवीय, प्रकाशक– तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी, 2007
- शतपथ ब्राह्मण – पं0 चिन्नस्वामी शास्त्री तथा पं0 पट्टाभिराम शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
- ईशावास्योपनिषद् – गीता प्रेस, गोरखपुर
- 108 उपनिषद् – पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक– संस्कृति संस्थान, बरेली, 2007
- भाषा विज्ञान– भोलानाथ तिवारी (संस्करण–1996, प्रकाशक– किताब महल)
- भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र– डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी (विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2005)
- संस्कृत साहित्य का इतिहास– मैकडॉनल
- वेद क्या कहते हैं? – अभिलाष दास, प्रकाशक– कबीर पारख संस्थान, इलाहाबाद, 2010 ई0
- वेद व विज्ञान – स्वामी प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती, अनुवादिका– डॉ0 उर्मिला शर्मा, प्रकाशक– विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2004
- वेदों में समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और शिक्षाशास्त्र – डॉ0 कपिल देव द्विवेदी, प्रकाशक– विश्वभारती अनुसंधान परिषद् ज्ञानपुर (भदोही) 2002 ई0
- वैदिक साहित्य और – वाचस्पति गैरोला, प्रकाशक– संवर्तिका प्रकाशन,

संस्कृति इलाहाबाद, 1970

संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास– डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी।